आदिलबाद जिले में भी किनवत और राजोर तालुका में मराठी भाषा बोली जाती है। एक और तालुके में भी मराठी भाषा बोली जाती है। अतः उतनूर तालुका तथा बाथ तालुका के इतकार क्षेत्र को महाराष्ट्र में मिला दिया जाय।

मैं कांग्रेस हाई कमाण्ड को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने महाराष्ट्र के लोगों की बात सुनी। मैं अपील करता हूं कि बम्बई नगर को भी वह महाराष्ट्र में मिला दें।

प्रधान मंत्री तथा वैदेशिक कार्य मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू) : श्रीमान् मैं समझता हूं कि आज इस वाद-विवाद का सातवां दिन है और जैसा कि आपने अभी हमें बताया कि लगभग ७० व्यक्ति पहले बोल चुके हैं। अतः मेरा नम्बर ७१वां है। मैं सभा का समय लेने के लिये इसलिये नहीं हिचकिचा रहा था कि मैं इसमें अधिक दिलचस्पी नहीं रखता बल्कि इसलिये कि शायद मैं इस सम्बन्ध में कुछ अधिक प्रकाश न डाल पाऊंगा। मैं साफ बताना चाहता हूं कि इस बात में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है कि किस राज्य की सीमा कहां रहे और मैं इस बात के कारण अधीर और उत्तेजित भी नहीं हो सकता। बेशक, मेरी अपनी पसंद है पर इससे मुझे कोई मतलब नहीं कि किसी विशेष राज्य की सीमा कहां निश्चित की जाती है। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि सीमा के दोनों ओर क्या होता है और बड़े बड़े क्षेत्रों के भीतर क्या होता है जिनकी संख्या कम ही है। वह भाषा या द्वै-भाषा—किसी भी दृष्टिकोण से देखिये—चूंकि यह बात तय है कि बहुत से क्षेत्र बनेंगे तो हमें यह देखना है कि उसमें रहने वाले, भाषा की दृष्टि से या अन्य किसी दृष्टि से, अल्प संख्यक कहे जाने वालों की क्या दशा होगी। मेरे लिये यह बात इस बात की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण मालूम होती है क किस राज्य की सीमा कहां निर्धारित की जाती है। क्योंकि यदि आप एक बार इन मूल सिद्धान्तों को ठीक ठीक तय कर लेते हैं और उन पर ठीक तरह से अमल करते हैं तो आगे पैदा होने वाली अनेक कठिनाइयां और जनता की शिकायतें खुद बखुद खतम हो जायेंगी।

मैं सभा को बताना चाहता हूं कि मैं प्रधान मंत्री की हैसियत से या सरकार की ओर से नहीं बोल रहा हूं और मैं कोई युग प्रवर्तक घोषणा भी नहीं करने जा रहा हूं। पिछले कई हफ्तों से हम जो मंत्रिमण्डल में हैं, इस प्रतिवेदन और इससे सम्बन्धित अन्य मामलों पर विचार कर रहे हैं और हम तब तक विचार करते रहेंगे जब तक कि हम सिफारिशों को सभा के सामने उसके विचार के लिये रखने के लिये तैयार नहीं कर लेते। और मेरे लिये या सरकार के किसी सदस्य के लिये यह वाजिब नहीं होगा कि वह इस मामले के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कोई बात कहे। पर मैं प्रतिवेदन की सिफारिशों या दिये गये अन्य सुझावों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर सकता हूं।

मैं एक बात बताना चाहता हूं कि कुछ समाचारपत्रों में आयोग की कुछ आलोचना की गयी है। मुझे इस बात का बहुत खेद है। मैं नहीं जानता कि किसी सदस्य ने कहां तक ऐसी बातें कहीं। उनकी सिफारिशों को कोई भी आलोचना कर सकता है पर आयोग की आलोचना करना और यह कहना कि आयोग ने पक्षपात किया है यह गलत तरीका है और ऐसी बात है जिससे ऐसे कामों में बहुत सी कठिनाइयां पैदा होंगी। हम योग्य व्यक्तियों को आयोग में रखते हैं वे काफी कठिनाई उठाते हैं और हमें बताते हैं कि अमुक समस्या के बारे में उनकी क्या राय है। आप उससे सहमत हों या न हों पर उनकी सद्भावना या ईमानदारी पर आघात करना केवल गलत तरीका ही नहीं है बल्कि यह भी प्रकट करता है कि आप

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

का पक्ष कमज़ोर है। दूसरे पक्ष के न्यायवादी को गाली देने की तरह की एक पुरानी बात है।

मैं सभा को यह भी बताना चाहता हूं कि सदस्य अपने चुनाव क्षेत्र के प्रतिनिधि के अतिरिक्त कुछ और भी हैं। वे भारत के केवल एक विशेष क्षेत्र के ही प्रतिनिधि नहीं होते बल्कि भारत की संसद् का प्रत्येक सदस्य भारत का सदस्य है और भारत का प्रतिनिधित्व करता है और कोई सदस्य यह बात कभी भी नहीं भूल सकता कि भारत उस विशेष कोने से कोई बड़ी चीज है जिसका प्रतिनिधित्व वह करता है। हम सभी जानते हैं कि हमें बहुत सी विगठन कारी शक्तियों का सामना करना पड़ता है, मैं विगठनकारी शब्द का प्रयोग किसी बुरे अर्थ में नहीं कर रहा हूं, इसका अर्थ यह है कि लोगों का ध्यान भारत की बड़ी समस्याओं से हटा कर स्थानीय, राज्य की या प्रदेश की समस्याओं की ओर लगाया जा रहा है। वास्तव में दोनों में कोई संघर्ष नहीं होना चाहिये पर यह प्रश्न तो यह है कि हम किसी बात पर किस ढंग से विचार करते हैं। अंग्रेजी भाषा में एक शब्द संकीर्णता है। अर्थात्, एक व्यक्ति अपने गांव या क्षेत्र की बात सोचता है और अधिक महत्वपूर्ण बातों को भूल जाता है; और जब यह एक राज्य की बात सोचता है तो उससे महत्वपूर्ण बातों अर्थात् राष्ट्र या सम्पूर्ण देश के हित को भूल जाता है।

यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे भारत तथा बहुधा विदेशों में घूमने का खूब अवसर मिला है। शायद, सभा के सदस्यों की अपेक्षा मुझे ऐसे कामों का अधिक अवसर मिला है। परिणामस्वरूप मैं विस्तृत दृष्टिकोण से सोचने के लिये मजबूर हो गया हूं, मैं सभी बातों पर केवल राष्ट्रीय ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण मे सोचता हूं और भारत पर भी उसी दृष्टिकोण से विचार करता हूं। शायद, चीजों को सही तरह से सोचने में इससे सहायता मिलती है। जब मैं भारत में सफर करता हूं तो मैं भारत का चलता फिरता नाटक देखता हूं और उससे प्रेरणा लेता हूं। बेशक, बहुत सी चीजें मुझे पसन्द नहीं हैं; पर भारत के इस महान नाटक में अधिकांश चीजें ऐसी हैं जो मानों पूर्व निश्चित भाग्य के आदेश के अनुसार अपनी पूर्ति या लक्ष्य की ओर बढ़ती जा रही हैं। मैं सभा को बताना चाहता हूं यदि हम बाहर जा कर एशिया के दक्षिण में स्थित भारत को देखते हैं तो यह बात हमें और अधिक दिखाई पड़ती है। मैं सभा को यह भी बताना चाहता हूं कि इस दुनिया में ऐसे बहुत से लोग हैं जो भारत में जो कुछ हो रहा है उसे साहसपूर्ण कार्य समझने लगे हैं। अब लोगों का दृष्टिकोण ऐसा हो गया है। और उनका यह भी कहना है कि हमने बड़ी बहादुरी से बड़ी बड़ी कठिनाइयों और बड़ी बड़ी समस्याओं पर विजय पाई है। यह सच है कि अभी हमारे सामने इससे भी बड़ी बड़ी समस्यायें हैं पर हमने पहले जितनी सफलता पाई है उसको देखते हुये लोग हमारी भावी सफलता की क्षमता को आंकते हैं। मैं बताना चाहता हूं कि यह दृष्टिकोण कुछ महत्व रखता है। हम बिहार या बंगाल या उड़ीसा की सीमा के सम्बन्ध में तर्क करते हैं, और इसमें कोई शक नहीं कि इस प्रश्न पर तर्कों का महत्व भी है पर ऐसी भी बातें हैं जो इससे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि महत्व शब्द तुलनात्मक है। इस से भी अधिक महत्वपूर्ण बातें हो सकती हैं। ' किसी भी व्यक्ति को इस बात पर उत्तेजित नहीं होना चाहिये कि किस राज्य की सीमा कहां होगी बशर्ते कि हम भारत को पूरी तरह समझते हों और बशर्ते कि संविधान द्वारा या अन्य किसी प्रकार लोग, चाहे वे किसी सीमा के इस पार रहे या उस पार, सभी प्रकार की उन्नति करने

के लिये पूरा अवसर और पूरा अधिकार पा सकें। इस बात को ध्यान में रख कर मैं इस मामले पर विचार करता हूं और मैं समझता हूं कि इस विस्तृत दृष्टिकोण को लोगों ने छोड़ दिया है। हमने भाषावार प्रान्तों की बातें कीं और कुछ लोगों ने कहा कि भाषावाद का सिद्धान्त ज्यादा से ज्यादा बढ़ाया जाय; कुछ लोगों ने मेरे सहकारी, माननीय गृह-कार्य मंत्री की आलोचना की क्योंकि उन्होंने केवल इस बात को मुख्य तथा अन्तिम आधार नहीं माना। मैं बहुत ही संक्षेप में यह बताना चाहता हूं कि उस सिद्धान्त का जैसा सम्मान रहा है, मैं उसे शतप्रतिशत नापसंद करता हूं।]

[अब मैं बिलकुल स्पष्ट बताना चाहता हूं कि इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं इस बात को नापसन्द करता हूं कि भाषा का हमारे प्रशासन या शिक्षा या संस्कृति में महत्व रहे क्योंकि मेरे विचार से जनता के विकास के लिये भाषा का महत्व है। किन्तु मैं इन दो बातों को अलग मानता हूं अर्थात् एक तो भाषावार क्षेत्र में अपने को रखने की तीव्र इच्छा और उस क्षेत्रके चारों ओर एक दीवार खड़ी करना जिसे राज्य की सीमा कहा जाय, और दूसरे भाषा का पूरा पूरा विकास करना। मैं पूरी तरह मानता हूं कि भाषा के बिना वास्तव में जनता का विकास नहीं हो सकता किन्तु मैं यह नहीं समझ पाता कि उनके और भाषा के विकास के लिये उनके और दूसरों के बीच रुकावट पैदा करना, चारों ओर एक दीवार खड़ी करना और यह कहना कि यह अमुक भाषी क्षेत्र है, क्यों आवश्यक है। आप इस बात की उपेक्षा नहीं कर सकते कि भारत जैसे राज्य में भाषा-क्षेत्र हैं और वैसा करना आवश्यक भी नहीं है। वे जिस रूप में हैं ठीक हैं, वे सदियों के विकास का प्रतीक हैं। किन्तु उन्हें दूसरों के प्रतिकूल समझना और दो क्षेत्रों के बीच एक पक्की रेखा खींचना ज्यादती है। वास्तव में इस बात का कोई महत्व नहीं कि आप कहां रेखा खींचते हैं। यदि बिलकुल भाषा की दृष्टि से देखा जाय, तो आप अनेक की इच्छा के विरुद्ध जाते हैं। निश्चय ही कुछ द्वि-भाषा भाषी क्षेत्र हैं और यदि वे आज न भी हों तो क्या आप लोगों को एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने से रोकेंगे? क्या आप एक राज्य से दूसरे राज्य में जनता के, कर्मचारियों के आने जाने को रोकेंगे? आप उन्हें रोक नहीं सकते क्योंकि वह हमारे संविधान के विरुद्ध होगा। आप कहीं भी रेखा खींचें, लोग एक ओर से दूसरी ओर के लिये आकर्षित होंगे और उस राज्य के अथवा सीमावर्ती क्षेत्र की भाषावार रचना को बदल देंगे। यह बिलकुल असम्भव है कि कुछ वर्षों के बाद आप किसी खास तहसील या तालुका को एक राज्य से निकाल कर दूसरे राज्य में इसलिये रख दें कि उसमें जन संख्या का अनुपात बदल गया है। अतः आपको यह समझना चाहिये कि जहां बड़ी बड़ी भाषाओं के भाषावार क्षेत्र हैं, वहां दो क्षेत्रों के बीच प्रायः द्विभाषी क्षेत्र अथवा कभी त्रिभाषी क्षेत्र भी हैं। आप कहीं भी अपनी रेखा खींचें, आप एक समूह के प्रति न्याय और दूसरे के प्रति अन्याय करते हैं। इस प्रतिवेदन में बताया गया है कि इन समस्याओं के सम्बन्ध में हमारी क्या कठिनाई है, और कठिनाइयां अनेक हैं। भाषा के दृष्टिकोण से कठिनाई यह है कि दोनों पक्षों के पास अच्छी युक्तियां और अच्छे तर्क हैं। यदि केवल एक ही ओर अच्छे तर्क हों तब तो हम बड़ी सरलता से निर्णय कर सकते हैं किन्तु दोनों ओर ही अच्छे तर्क हैं और उनका परस्पर संघर्ष होता है। आप दोनों को तौल सकते हैं और कह सकते हैं कि अमुक तर्क दूसरे से अधिक ज़ोरदार है। यदि एक पक्ष अधिक अच्छा हो, तो दूसरी ओर का पक्ष भी उतना ही अधिक अच्छा है। आप कैसे मान लेंगे कि कितने व्यक्ति अमुक भाषा बोलते हैं और कितने दूसरी भाषा बोलते हैं? चूंकि एक मामले में कुछ बहुमत है इसलिये इस तरह की चीज ठीक हो सकती है। कभी कभी ऐसा किया जा सकता है, किन्तु उससे हम

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

बेहूदा परिणामों पर पहुंचते हैं । अतः भाषा के प्रश्न को इस अर्थ में अलग रख कर इस विषय पर विचार करना होगा कि संविधान में उल्लिखित सभी बड़ी बड़ी भारतीय भाषाओं का और उन भाषाओं का भी जिन का संविधान में उल्लेख नहीं किया गया है, जैसे पूर्वोत्तर सीमान्त क्षेत्र तथा अन्य क्षेत्रों की भाषाओं —–विकास किया जाना चाहिये । दूसरी बात यह है एक भाषा का विकास दूसरी के विकास के लिये बाधक नहीं होनी चाहिये और नहीं हो सकती । यह एक विचित्र कल्पना है कि भारत में एक भाषा का विकास दूसरी भाषा के विकास के लिये बाधक होता है । मुझे पक्का विश्वास है कि एक भाषा का विकास दूसरी भाषा के विकास में सहायक होता है । अभी एक दो वर्ष पूर्व चालू की गयी साहित्य अकादमी का अध्यक्ष बनने का मुझे श्रेय प्राप्त हुआ है, जहां हम भारत की सभी भाषाओं के बारे में विवेचन करते हैं और उन्हें प्रोत्साहन देने का प्रयास करते हैं । इन विषयों पर जितनी ही अधिक चर्चा हमने की, हमने यह देखा कि प्रत्येक भाषा को प्रोत्साहन देने से और उसके विकास से दूसरी भाषा को भी कुछ लाभ हुआ है । और उसका विकास हुआ है । हम तो एक भाषा से अन्य भाषाओं में अनुवाद कराने का भी प्रयत्न कर रहे हैं । मैं तो यहां तक कहूंगा कि एक विदेशी भाषा का ज्ञान भारतीय भाषा की वृद्धि में सहायक होता है । यदि हम विदेशी भाषाओं से अलग हो जाय, तो हम न केवल उन विचारों से वरन उस औद्योगिकी से जो आधुनिक जीवन का एक भाग है, वंचित रह जाते हैं । अतः हम किसी भाषा को छोड़ देने का विचार न करें । उदाहरण के लिये, यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि कुछ लोग उर्दू भाषा से क्यों डरते हैं । मैं बड़े अभिमान से उर्दू बोलता हूं और आशा है आगे भी बोलता रहूंगा । मैं नहीं समझता कि किसी राज्य में भारतीय लोग उर्दू को एक विदेशी भाषा या एक ऐसी चीज जो उनके क्षेत्र का उल्लंघन करती है, क्यों समझते हैं । हमारे संविधान में उर्दू भाषा का उल्लेख किया गया है । क्या वह केवल कल्पना में ही रहेगी और वास्तव में उस का प्रयोग नहीं होगा ? इस प्रकार की संकुचित विचारधारा पर मुझे आपत्ति है ।

लोग भाषाशास्त्र के सम्बन्ध में तर्क करते हैं । हमने पंजाबी और गुरुमुखी लिपि की उत्पत्ति के बारे में और हिन्दी के साथ पंजाबी भाषा का सम्बन्ध या उस के अलग होने के बारे में विद्वतापूर्ण तर्क सुने हैं ये तर्क ऐसे दिये गये मानों इस बात का कोई महत्व हो । मुख्य बात यह है कि लोग आज कल क्या करते हैं । यदि पंजाब के या और कहीं के लोग कोई भाषा बोलने या किसी लिपि का प्रयोग करने के अभ्यस्त हैं या करना चाहते हैं तो मैं उन्हें वैसा करने के लिये पूरी स्वतंत्रता, प्रत्येक अवसर और प्रोत्साहन देना चाहता हूं । क्योंकि यदि अत्यन्त संकुचित और व्यावहारिक दृष्टिकोणों से भी देखा जाय, तो जितना ही उसे दबाने का प्रयत्न किया जायेगा उतना ही अधिक विरोध होगा और उसे बल मिलेगा । प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि भाषा के सम्बन्ध में लोगों में बहुत तीव्र भावनायें हैं । हिन्दी अथवा अन्य किसी भाषा के सम्बन्ध में इन तीव्र भावनाओं को मैं समझ सकता हूं । किन्तु प्रत्येक व्यक्ति को यह भी याद रखना चाहिये कि उस विषय में दूसरे व्यक्ति की भावनायें भी उसी प्रकार तीव्र हो सकती हैं । अतः एकमात्र सुरक्षित मार्ग यही है कि सभी को पूरी स्वतन्त्रता और पूरा पूरा अवसर दिया जाय । उन्हें स्वाभाविक रूप में विकसित होने दिया जाय । यदि उनमें सामर्थ्य है तो वे एक दूसरे को प्रभावित करेंगी और अधिकाधिक महत्वपूर्ण बनती जायेंगी, अन्यथा वे कम विकसित रहेंगी । किसी को यह कहने फिरने की आवश्यकता नहीं कि अमुक भाषा जैसे गुरुमुखी भाषा पिछड़ी हुई है ।

यदि ऐसा है तो हमें उसका विकास करने का प्रयत्न करना चाहिये और स्वाभाविक परिस्थितियों में इन भाषाओं का उपयोग और महत्व बढ़ने देना चाहिये । किसी एक भाषा की निन्दा करने का प्रयत्न न केवल उस भाषा की दृष्टि से वरन् अन्य भाषाओं की दृष्टि से और उन भाषाओं को बोलने वालों की दृष्टि से बहुत बुरा है । अतः अच्छी नीति और अधिक संकुचित दृष्टिकोण से भी यही एकमात्र ठीक नीति है ।

मैं भाषा के इस प्रश्न का विवेचन इसलिये कर रहा था कि वह राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न से किसी प्रकार सम्बन्ध हो गया है । मैं फिर दोहराता हूं कि मैं भाषा को सब से अधिक महत्व देता हूं किन्तु मैं उसे किसी राज्य के साथ जोड़ना नहीं चाहता । निश्चय ही भारत में ऐसे राज्य होंगे जहां एक भाषा प्रधान होगी । यदि ऐसा है, तो उसे रहने दिया जाये, हम उसे प्रोत्साहन देते हैं । किन्तु ऐसे क्षेत्र भी अवश्य होंगे जहां दो भाषायें होंगी । जैसा कि मैंने कहा, हमें दोनों को प्रोत्साहन देना चाहिये । हमें यह बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहिये हो उस राज्य की प्रधान भाषा राज्य की अन्य भाषाओं की उपेक्षा नहीं करेगी और न ही उन्हें दबायेगी । यदि हम यह बात स्पष्ट कर दें तो भाषा का प्रश्न उपस्थित नहीं होता ।

भाषा के साथ साथ अन्य प्रश्न जैसे आर्थिक और सांस्कृतिक प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं जो उससे सम्बद्ध हैं । फिर उन दोनों को एक ही आधार पर समझना चाहिये । अर्थात् प्रत्येक संस्कृति को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये । आप जितना अधिक सम्मिलित करेंगे आप उतने ही अधिक सुसंस्कृत कहे जायेंगे । जितनी अधिक दीवारें आप खड़ी करेंगे आप उतने ही अधिक असंस्कृत होंगे । यही संस्कृति की परिभाषा है । अतः हमें संस्कृति के प्रत्येक पहलू को प्रोत्साहन देना चाहिये । यदि दुनिया के विकास और परिवर्तन में, कोई चीज पीछे रह जाती है तो उसे रहने दीजिये । किन्तु यदि आप उसे पीछे ढकेलने का प्रयत्न करें तो कदाचित् आप सफल न हों और वास्तव में उससे संघर्ष उत्पन्न होता है जिससे अपनी ही संस्कृति को नुकसान पहुंचता है ।

मैं व्यक्तिगत रूप से द्विभाषी अथवा बहुभाषी क्षेत्रों का स्वागत करता हूं । मैं एकभाषी क्षेत्र में रहने की अपेक्षा द्विभाषी और त्रिभाषी क्षेत्रों में रहना और वहां अपने बच्चों का पालन पोषण करना अधिक पसन्द करूंगा । क्योंकि मेरे विचार में मैं उस प्रकार भारत को, दुनिया को और एक विस्तृत संस्कृति को अधिक अच्छी तरह समझ सकूंगा ।

मैं एक व्यक्तिगत बात का उल्लेख करूंगा । जब अपनी लड़की की शिक्षा की समस्या मेरे सामने आयी, तब कई वर्षों तक मैं उसके साथ न था । तब मैंने उसे बचपन में ही पूना के एक पाठशाला में भेजा नाकि उत्तर प्रदेश में, क्योंकि मैं चाहता था कि वह भारत की कुछ भाषायें सीखे ले । मैंने उसे पूना की एक गुजराती पाठशाला में भेजा जिससे वह मराठी और गुजराती भाषायें सीख सके और उन के प्रभाव जान सके । बाद में मैंने उसे शांतिनिकेतन में भेजा क्योंकि मैं चाहता था कि वह न केवल बंगला वरन् बंगाली सांस्कृति की पार्श्वभूमि का ज्ञान प्राप्त करे । मैं सफल हुआ या नहीं यह एक दूसरी बात है किन्तु मेरा दृष्टिकोण ऐसा था । मैं चाहता था कि वह दक्षिण में जा कर तामिल या तेलगू या मलयालम् भी सीखे । किन्तु निश्चित ही जीवन इतना लंबा नहीं होता कि प्रत्येक राज्य में जाना संभव हो ।

श्री मेघनाद साहा (कलकत्ता-उत्तर-पश्चिम) : ऐसे व्यक्ति कितने प्रतिशत हैं जो एक से अधिक भाषा सीख सकते हैं ? ९० प्रतिशत लोगों में दूसरी भाषा सीखने

[श्री मेघनाद साहा]

की सामर्थ्य नहीं होती और आपको ९० प्रतिशत लोगों के लिये विधान बनाना चाहिये।

श्री जवाहरलाल नेहरू : मेरे विचार से ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक है जो एक से अधिक भाषायें सीख सकते हैं। आपको और मुझे दूसरी भाषा सीखने में कुछ कठिनाई हो सकती है क्योंकि हम व्याकरण और अन्य बातों को ले कर आगे बढ़ते हैं। किन्तु आप दिल्ली की गलियों से लोगों को लीजिये और उन्हें एक दूसरी भाषा के वातावरण में रख दीजिये। आप देखेंगे कि वे तीन महीने में वह भाषा बोलने लग जायेंगे। मैं जानता हूं और मैं एक दूसरा उदाहरण दे सकता हूं। हमारे विदेशी दूतावासों में हमारे सचिवों और अन्य लोगों को उस देश की भाषा सीखनी होती है। वे वैज्ञानिक ढंग से उस भाषा को सीखने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु उनके कुछ सीखने के पूर्व ही वहां के कुछ कर्मचारी उस भाषा को समझने लगते हैं और बोलने लग जाते हैं।

इसलिये, सवाल एक भाषा को सही-सही सीखने भर का नहीं, बल्कि उसे समझने लायक बनने का, और इस प्रकार एक अन्य जनता के जीवन में घुलने-मिलने का है। यह महत्वपूर्ण है। बिना किसी दुभाषिये की मदद के लोगों से सीधे-सीधे बातें करने लायक न होते हुये भी उन्हें समझने की कोशिश करने से अधिक मुश्किल और कोई भी काम नहीं है। दुभाषियों का इस्तेमाल एक बहुत वाहियात सी चीज़ है।

इसीलिये, मैं तो कहूंगा कि इस सारी रिपोर्ट का आखिरी भाग ही, वह आखिरी अध्याय ही जिन में कुछ परित्राण का जिक्र है, वही हमारे लिये सबसे पहला और सबसे अहम सवाल है। उसमें दिये हुये परिमाण पूरे पड़ेंगे या नहीं, यह एक अलग सवाल है। यदि आप चाहें तो उनमें और भी परित्राण जोड़े जा सकते हैं। लेकिन बात यह है कि यदि संविधान में न हो सके तो किसी अन्य तरीके से इन परित्राणों को एक स्पष्ट रूप में निश्चित कर लेना चाहिये। यह आवश्यक है जिससे कि इस देश में हर जगह हर भाषा के साथ न्याय किया जा सके। इसके बारे में किसी भी बहस की गुंजाइश नहीं है। हमें यह नहीं कहना चाहिये कि हमारी ही भाषा को यहां हावी रहना चाहिये, क्योंकि हम बहुमत में हैं। हर भाषा को, चाहे वह अल्पसंख्यकों की ही क्यों न हो, रहने का बराबर का अधिकार है। हां, यह जरूर है कि उसे बोलने वालों की संख्या पर्याप्त होनी चाहिये। हर किसी छोटे-मोटे समूह की एक भाषा नहीं बनाई जा सकती। मुझे मालूम है कि कि बम्बई कार्पोरेशन १४ भाषाओं में स्कूल चलाता है। यह इसलिये कि बम्बई एक विशाल शहर है और उसमें सभी प्रकार के भाषाभाषी लोग मौजूद हैं।

दूसरी बात यह कि —यदि मैं कोई एक निश्चित बात कहने की धृष्टता करूं— मैं यही कहूंगा कि हर मामले में अल्प-संख्यकों को संतुष्ट रखने की सबसे पहली जिम्मेदारी बहुसंख्यकों पर ही है। बहुसंख्यक लोग बहुसंख्या में होने के नाते ही स्वाभाविक तौर पर जो चाहें उसे करने की ताकत रखते हैं। उनको किसी संरक्षण की जरूरत नहीं होती। अल्प-संख्यकों को संविहित संरक्षण देने की प्रथा एक बुरी प्रथा है, एक बहुत सी अवांछनीय प्रथा है। कभी-कभी तो उत्साह बढ़ाने के रूप में, पिछड़े हुये वर्गों का उत्साह बढ़ाने के रूप में तो यह ठीक हो सकती है, पर यह कोई अच्छी चीज नहीं है। इसीलिये, अधिक शक्तिशाली स्थिति में होने के नाते यह दायित्व और कर्त्तव्य बहुसंख्यक समुदाय का ही है वह भाषा, धर्म या जाति के चाहे ही कारण बहुसंख्यक हों—

वह अल्पसंख्यकों को अपनी ओर लाने के लिये उसकी आवश्यकताओं की ओर विशेष ध्यान दे। यदि दूसरी शक्तियां अल्पसंख्यकों की रक्षा न करें, तो बहुसंख्यक उन्हें कुचल भी सकते हैं। इसलिये, जहां भी ऐसा कोई सवाल उठता है, मैं व्यक्तिगत रूप में हमेशा अल्पसंख्यकों के पक्ष में ही रहता हूं, फिर चाहे वह भाषा सम्बन्धी अल्पसंख्यक हो, या धर्म के आधार पर।

धर्म को यदि उसके व्यापक अर्थ में लिया जाये, तो यह साफ है कि भारत में हिन्दू धर्म के मानने वाले अन्य धर्मों के मानने वालों की तुलना में कहीं अधिक हैं। वे काफ़ी शक्तिशाली हैं, और कोई भी उन्हें उनकी इस स्थिति से गिराने नहीं जा रहा है। इसीलिये, यह उनका दायित्व है--एक विशेष दायित्व है--कि भारत में अन्य धर्मों को मानने वालों को, जिन्हें अल्पसंख्यक भी कहा जा सकता है, पूरी-पूरी स्वतंत्रता रहे, उन्हें पूरी आजादी हो और उनमें संतोष की यह भावना हो कि उन्हें अपने विकास की पूरी स्वतन्त्रता है। यदि इस विशेष सिद्धान्त को लागू किया जाये तो मैं समझता हूं कि यह अधिकांश तकलीफें और कठिनाइयां खत्म हो जायेंगी।

एक मांह, या शायद उससे कुछ कम हो समय पहले, अपने यहां आने वाले सोवियत नेताओं के स्वागत के लिये कलकत्ते में इकट्ठे होने वाले अपार जन समूह की उस आम सभा में पंचशील के बारे में बहुत कहा जा चुका है। सभा को मालूम है कि आज कल हर कोई पंचशील की बात करता है। उस सभा में मैंने यह कहा था कि भारतीयों के लिये पंचशील का विचार कोई नया विचार नहीं है। हो सकता है कि दूसरों के लिये भी यह कोई एक नया विचार न हो। मैंने कहा था कि पंचशील का यह विचार भारतीय विचारधारा और संस्कृति में विहित रहा है, क्योंकि पंचशील अन्ततः सहनशीलता का ही संदेश है और उस विराट सभा में मैंने अशोक राजकीय की घोषणाओं के उद्धरण देते हुये कहा था: "भारतीय संस्कृति का यही आधार है और पंचशील इसी से उत्पन्न हुआ है।" मैं नहीं जानता कि उस अवसर पर ऐसा उद्धरण देना उचित था, या नहीं। स्वाभाविक ही है कि पंचशील हमारे ऊपर कोई थोपी हुई चीज नहीं है। यह दूसरी बात है कि कभी-कभी हम अपने आचरण से गिर जायें, जैसा कि हम कभी-कभी करते हैं। लेकिन, आधारभूत भारतीय चिन्तन यही है, और यह इतने लम्बे युगों तक अविछिन्न भी रहा है।

हमने ही इस विशाल संसार में, आपस में मरते-जूझते इस संसार में, इस पंचशील और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की बात कही है। और, इसके लिये हमें कुछ, काफी हद तक सम्मान भी मिला है और सभी की आंखें हम पर लगी हैं। हमने ऐसा क्यों किया? मैं तो यही कहूंगा कि ऐसा हमने एक तो इसलिये किया कि हमारी विचार धारा सही रही है और कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर खड़ी रही है जो अवसरवादी नहीं हैं और दूसरे इसलिये कि हम जिन आम नीतियों पर चले हैं वे हमारे व्यवहारों से बहुत अधिक दूर नहीं जा पड़ी हैं। इसका मतलब यह है कि वैदेशिक नीति के बारे में निर्धारित किये हुये हमारे आदर्शों में और हमारे व्यवहारों में कभी बहुत भारी अन्तर नहीं आ पाया है। मैं यह नहीं कहता कि वे एक दूसरे के बिलकुल अनुरूप रहे हैं, लेकिन उनमें काफी सामीप्य अवश्य रहा है। और जहां भी विचार और व्यवहार एक दूसरे के अनुरूप रहते हैं शक्ति पैदा हो जाती है। एक व्यक्ति, दल या राष्ट्र के तथाकथित आदर्शों और उसके अपने व्यवहार का टकराव ही है जो कुपरिणाम पैदा करता है और उसे निराशा से भर देता है। जो भी व्यक्ति, दल, या राष्ट्र अपने स्वयं के आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करने में समर्थ होता है,

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

वही कुछ कर दिखाता है । स्वतंत्रता और आज़ादी के अपने संघर्ष में ही हमें सामान्यतया अपने आदर्शों को अपने नित्य-प्रति के व्यवहार से जोड़ने योग्य बनने का, और साथ ही साथ व्यक्तियों तथा एक राष्ट्र के रूप में शक्ति प्राप्त करने का सौभाग्य मिला था ।

इसीलिये, हम अपनी वैदेशिक नीति में यहां तक सफलता प्राप्त कर सके हैं । और मैं इसी बीच में दो और बातें भी कहना चाहता हूं ? यह सिर्फ इसीलिये नहीं कि वे प्रसंग से सम्बद्ध हैं, बल्कि इसलिये भी कि उनको लेकर विदेशों में हमारी आलोचना की गई है । ये दोनों बातें हैं गोआ और काश्मीर के बारे में । कुछ लोग हमारी यह आलोचना करते हैं कि शान्ति और उपनिवेशवादिता के विरुद्ध इतने ज़ोर से आवाज़ उठाने वाले हम लोग काश्मीर और गोआ में एक दूसरी ही नीति पर चलते हैं । हमारे आलोचक यही कहते हैं । पर, मेरा विचार है कि इतिहास लिखने वाले काश्मीर और गोआ को हमारी सहनशीलता के उज्ज्वलतम उदाहरणों की तरह ही पेश करेंगे । अपनी निर्धारित की हुई आदर्शवादी नीति पर चलने के लिये तमाम अवसरों पर हमने जिस तरह अपने क्रोध और क्षोभ को भड़कने नहीं दिया और जिस तरह अपना धैर्य बनाये रखा है, उसे सहनशीलता का उज्जवलतम उदाहरण माना जायेगा ।

हां, मैं कह रहा था कि मैं इस या उस प्रदेश की सीमाओं के बारे में इतना चिन्तित नहीं हूं । मुझे केवल दो बातों की चिन्ता है । पहली तो है कि आपके जीवन का क्या सिद्धान्त है इससे कोई मतलब नहीं कि आप कहां रहते हैं और किस पक्ष में हैं । और दूसरी बात है इस समस्या को देखने का तरीक़ा; कहने का अर्थ है कि हम इन मामलों पर किस तौर-तरीके पर चर्चा करते हैं, उन्हें किस तरह निबटाते हैं और अपने किये हुये निर्णयों को हम कैसे मानते हैं । यह अत्यावश्यक है । निर्णय आप जो भी करें, पर उस निर्णय पर पहुंचने का आपका तरीका ही सबसे अधिक आवश्यक है । एक व्यक्ति को सबसे अधिक उसके इसी तौर-तरीक़े से जाना जाता है । कोई अकेला व्यक्ति तो मनचाहा निर्णय कर सकता है, लेकिन जब एक समूह, एक विभिन्न मतों वाला समूह बैठता है तब वह अपने निर्णय किस तरह करता है ? उसके लिये जनतंत्र का तरीक़ा है, जो आपस में चर्चा करने का, बहस-मुबाहिसे का, एक-दूसरे को तर्कों से सहमत कराने का और तब कहीं जा कर अन्तिम निर्णय करने का है और उसके बाद फिर अपनी प्रकृति और अपने मत के विरुद्ध होते भी उस निर्णय को मानकर चलने का तरीक़ा है । जनतंत्र का तरीक़ा यही है । और अगर यह नहीं माना जाता तो फिर जनतांत्रिक तरीक़ा नहीं रहता ; जिसके पास भी बड़ी लाठी होती है, या अधिक बड़ा बम होता है उसकी ही बात चलती है ।]समस्या चाहे आण्विक बमों की हो, यह चाहे सड़कों पर होने वाले प्रदर्शनों की, इस मामले में प्रश्न अपनाये जाने वाले तरीके का ही उठता है । कहने का मतलब यह कि मैं प्रदर्शनों पर आपत्ति नहीं करता । मेरी आपत्ति उनमें होने वाली हिंसा पर है । प्रदर्शन निकालने का भी एक जनतंत्रात्मक तरीका है । मैं इन मामलों में होने वाली हिंसा पर ही आपत्ति करता हूं और यह हिंसा, यदि गुणात्मक रूप में देखी जाये तो, असल में एक सी ही है । इसके बाद आती है आवण्कि बमों की हिंसा । वह सही है कि आवण्कि बमों की हिंसा एक बड़े पैमाने की है, उससे होने वाला संहार अपार है, लेकिन वह हिंसा आपके सोचने के व्यक्तिगत करीक़े को इतना विषैला नहीं बनाती जितना कि वह छोटी–छोटी

हिंसायें बना देती हैं। यदि आप अपने पड़ोसी से घृणा करने लगें, तो उसके साथ आपकी निभ नहीं सकती। व्यक्ति के पतन के दृष्टिकोण से, यह एक ज्यादा खतरनाक बात है। पड़ोसी के प्रति आपकी घृणा आपके हृदय में धीमे-धीमे फैलकर उसमें पूरी तरह से छा जाती है। यह बहुत ही बुरी चीज़ है। यह ठीक है कि किसी देश या पूरे राष्ट्र के प्रति आपकी घृणा भी एक बुरी चीज़ है। घृणा अच्छी चीज़ नहीं है, लेकिन व्यक्ति, समूह या समुदाय के प्रति होने वाली, मुसलमान के प्रति हिन्दू की, या हिन्दू या सिख के प्रति मुसलमान की घृणा तो और भी अधिक बुरी क़िस्म की घृणा है। वह आपकी रोज़ाना की ज़िन्दगी को विषैला बना देती है। इसीलिये, मैं कहता हूं कि हमारे निर्णय से हमारा निर्णय करने का तरीक़ा अधिक महत्वपूर्ण है। हम शान्तिपूर्ण जनतंत्रात्मिक तरीक़ों या साधनों में विश्वास करते हैं या नहीं? इस मामले में कसौटी यही है, क्योंकि इस मामले में हम कुछ उत्तेजना महसूस करते हैं। हमें यह मानना चाहिये कि इस मामले में हम में से कुछ लोग अपने दृष्टिकोण के बारे में बहुत अधिक उत्तेजित हैं और इसमें भी शक नहीं कि उनकी उत्तेजना भी अकारण नहीं है। मुझे इस बात पर आपत्ति नहीं। लेकिन, हमें अपनी उत्तेजना पर काबू पाने लायक दृढ़ होना चाहिये। हम में इतनी दृढ़ता होनी चाहिये कि हम यह समझ लें कि इस सवाल को शान्ति के साथ, समझ बूझ कर तथा आपस में चर्चा करके तय करना और फिर अन्तिम प्राधिकार द्वारा किये गये निर्णयों को, वे जो भी कुछ हों, स्वीकार करना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। अन्तिम प्राधिकार तो स्पष्ट है, कि यही संसद् है। यह इसलिये जरूरी है कि बिलकुल अन्तिम रूप से तो कभी भी कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। लेकिन, साथ ही यह भी है कि कोई भी यह नहीं चाहता कि पूरे सवाल को उठाया जाये और उस पर बार-बार चर्चा करते रहें। यदि कोई शान्तिपूर्ण ढंग से या सभी बाह्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये एक वस्तुगत रूप में यह चर्चा कर सके, तो हो भी सकता है। इसलिये, हमें यह नहीं सोचना चाहिये कि हम हमेशा के लिये किसी एक निर्णय से बंध गये हैं। साथ ही, हमें उसे मान कर पूरी सद्भावना के साथ कार्यान्वित करना चाहिये। इसीलिये, बुनियादी सवाल सद्भावनापूर्ण तरीके का दृष्टिकोण का ही है। वास्तव में, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि निर्णय क्या होता है।

अब हमारे सामने जो दो या तीन सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, वे बम्बई, या पंजाब, या किसी अन्य राज्य के पुनर्गठन के बारे में ही हैं। इसमें हमारा उद्देश्य क्या है? हमारा उद्देश्य क्या हो सकता है? यदि मैं अपनी राय बताऊं, तो स्पष्ट ही मैं केवल यही चाहूंगा कि पंजाब या बम्बई की जनता एक दूसरे के प्रति सद्भावना रखे, और यदि वह बनी रहती है तो मैं इसकी जरा भी परवाह नहीं करूंगा कि उन राज्यों का बनता क्या है। बुनियादी चीज यही है। इससे कुछ भी नहीं बनता बिगड़ता कि आप एक राज्य को किस तरह विभाजित करते हैं, या दो राज्यों, या उससे अधिक राज्यों का उप-विभाजन किस प्रकार करते हैं।

यह ऐसा विषय है जिस पर हम प्रशासन के, आर्थिक, भाषा सम्बन्धी तथा अन्य आधारों पर विचार कर सकते हैं। परन्तु मुख्य बात यह है कि सब कुछ करने के बाद आपने वहां के निवासियों में सद्भावना और सहयोग उत्पन्न किया है कि नहीं क्योंकि हमें एक साथ रहना है और काम करना है। जो कुछ आपने किया है यदि उस पर प्रभाव ऐसा नहीं है तो आप जन संख्या के आंकड़ों, मानचित्रों तथा नाना प्रकार के तर्कों की चाहे जितनी दुहाई दें आप पूर्ण रूप में असफल रहेंगे।

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

विभिन्न भाषाओं तथा रंग बिरंगी विशेषताओं वाली भारतीय जनता का हम--यह संसद और भारत की जनता-- भविष्य निर्माण कर रहे हैं, उस का ताना बाना तैय्यार कर रहे हैं, फिर भी यह काम हम एक ही सरकार के अन्तर्गत कर रहे हैं। इसे बुनने की बजाय हम कैंची चाकू सम्भाल लें और काट छांट करने लगें तो वह बुरी बात है इसलिये हम जो भी निर्णय करें वह सद्भावना के साथ किया जाना चाहिये।

कुछ माननीय सदस्यों को स्मरण होगा कि हैदराबाद में मैंने जितने भाषण दिये उन में हैदराबाद के छिन्न भिन्न किये जाने का विरोध किया परन्तु परिस्थितियां मुझ से अधिक प्रबल हैं। मैं हैदराबाद या किसी अन्य स्थान की जनता को मजबूर नहीं कर सकता हूं इसीलिये मैंने इस निर्णय को स्वीकार कर लिया है। परन्तु मैं समझता हूं कि इस विषय को पांच साल तक इसी प्रकार रहने देना ठीक नहीं है जैसा कि आयोग ने सुझाव दिया है। हमें चाहिये कि इस विषय पर जैसा ठीक हो निर्णय कर डालें।

मैं इस सभा को विश्वास दिलाना चाहता हूं क्योंकि कुछ व्यक्तियों को इसमें संदेह है कि सरकारी तौर से प्राप्त होने के पहले मैं ने इस प्रतिवेदन की एक लाइन भी नहीं देखी थी। इस लिये जो कुछ मैंने पढ़ा वह मेरे लिये बिल्कुल नया था। मध्य प्रदेश सम्बन्धी सुझाव मुझे बहुत विचित्र लगा क्योंकि यह मेरे लिये बिल्कुल नया था। परन्तु मैंने इस पर विचार किया और अपने साथियों के साथ मैंने इसके सम्बन्ध में बातचीत की और मुझे अधिकाधिक विश्वास होता गया कि यह उचित सुझाव है। इस सम्बन्ध में मेरे मन में कोई पूर्वधारणा नहीं थी, मैंने बिना किसी पूर्वधारणा के इस पर विचार किया और मैंने एक ऐसे निर्णय पर पहुंचने की कोशिश की जो अधिक से अधिक सद्भावना को उत्पन्न करने वाला हो। इस के अतिरिक्त हम ने भारत के लगभग सभी राज्यों से पांच पांच, दस दस और बीस के समूह में आने वाले सैंकड़ों व्यक्तियों से भेंट की। उनके दृष्टिकोण पर विचार किया और उनके साथ बातचीत की जिससे हम ऐसे निर्णय पर पहुंच सकें जिसमें सब से अधिक सद्भावना बढ़े चाहे वह तर्क की दृष्टि से ठीक न हो। तर्क से अधिक मैं सद्भावना और सहयोग को आवश्यक समझता हूं। अभी तक हमने ऐसा ही किया है। सफलता कहां तक मिलेगी मैं यह कह नहीं सकता। परन्तु मुझे इतना विश्वास है कि सरकार को चाहे सफलता मिले या न मिले यह सभा अवश्य सफल हो सकती है। जो भी विनिश्चय किये जायें या किये गये विनिश्चय स्वीकार किये जायें वह चाहे ठीक न हों परन्तु सद्भावना के साथ किये जायें। यदि कहीं कोई विनिश्चय गलत किया गया हो तो हम शान्तिपूर्वक उस पर पुनः विचार कर सकते हैं।

अब दो मुख्य समस्याओं को लीजिये जैसे बम्बई और पंजाब की समस्यायें।

एक माननीय सदस्य : बिहार भी।

श्री जवाहरलाल नेहरू : मैं समझता हूं जहां तक बंगाल, बिहार और उड़ीसा का सम्बन्ध है, कोई और समस्या उन की समस्या जैसी महत्वहीन नहीं है। बिहार का एक भाग या बंगाल और उड़ीसा का एक भाग इधर से उधर कर दिया जाये तो कौन सी बड़ी हानि हो जायेगी? हां शर्त केवल यह है कि उनके साथ व्यवहार अच्छा किया जाये।

निस्संदेह रूप से बम्बई हमारे लिये भारी समस्या है। एक ओर से महाराष्ट्रियों की ओर से और दूसरी ओर से अन्य व्यक्तियों की ओर से जो तर्क दिये जाते हैं वह दोनों ही

बहुत महत्वपूर्ण हैं। बहुत सोच-विचार के बाद कांग्रेस कार्यकारिणी ने तीन राज्यों वाला सुझाव दिया परन्तु व्यक्तिगत रूप से मुझे वह पसंद नहीं आया और मैं समझता हूं कि वर्तमान परिस्थितियों में राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिश सब से अच्छी है। परन्तु वहां पर निवास करना है महाराष्ट्रियों, गुजरातियों तथा अन्य व्यक्तियों को। भारत के इतिहास में उन का कार्य इतना महत्वपूर्ण है और भारत के भविष्य में भी उनका कार्य बहुत महत्वपूर्ण होगा। अपना मत स्वीकार करने के लिये उनको विवश करने वाला मैं कौन हूं ?

पंजाब को लीजिये। लोग एक भाषा वाले और दो भाषा वाले राज्यों की बात कर रहे हैं। जहां तक पंजाब का प्रश्न है मैं भी पंजाबी भाषा को बहुत महत्वपूर्ण समझता हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि हिन्दी भाषी व्यक्तियों को आपत्ति क्यों है। पंजाब के लोक गीत पंजाबी संस्कृत का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। मुझे इससे कोई सरोकार नहीं है कि पंजाबी में गुरुमुखी लिपि में, टेकनोलोजी पर कितनी पुस्तकें हैं। यदि नहीं हैं तो राष्ट्रीय दृष्टिकोण से यह बहुत बड़ा अभाव है जिसकी या तो पूर्ति की जायेगी या भविष्य मे वह हमारे साथ आगे नहीं बढ़ सकेगी। मैं चाहता हूं कि पंजाबी भाषा को हर प्रकार से प्रोत्साहन दिया जाये परन्तु हिन्दी की हानि पहुंचा कर नहीं। हिन्दी को हानि पहुंचाने का सवाल ही नहीं। वह काफ़ी शक्तिशाली भाषा है। वास्तव में दोनों भाषाओं में सहयोग होना चाहिये। परस्पर एक दूसरे को उखाड़ फेंकने की भावना नहीं होनी चाहिये। भाषा की दृष्टि से पंजाब का कोई ऐसा हल सोचा ही नहीं जा सकता है जिस से पंजाब एक भाषा वाला राज्य बन जाये। जहां तक बोलने का सम्बन्ध हैं कहे चाहे कोई जो कुछ, लगभग सभी पंजाबी बोलते हैं। वास्तव में उनको हिन्दी और उर्दू भी आधी पंजाबी है। पंजाब का आप चाहें जैसा बटवारा करें हिन्दुओं और सिखों के अलग अलग भाग बनाना असम्भव है क्योंकि दोनों एक दूसरे से पूरी तरह से मिले हुये हैं। कुछ हेर फेर से एक को ४५ प्रतिशत और दूसरे को ५५ प्रतिशत किया जा सकता है या एक को ३० प्रतिशत और दूसरे को ७० प्रतिशत किया जा सकता है। परन्तु असली कठिनाई को दूर नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे प्रत्येक गांव में मिले जुले हुये हैं। इसलिये पंजाब का हित इसी में है कि दोमों एक दूसरे के साथ हिल-मिल कर रहें। पंजाबियों में बहुत बड़े बड़े गुण हैं। आज भी साधारण व्यक्ति के दृष्टिकोण से सब राज्यों में पंजाब सब से अधिक समृद्धिशाली है। भाखड़ा नंगल तथा अन्य योजनाओं को ध्यान में रखते हुये उन का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। हिन्दू और सिखों में से जो भी अपने को बहुमत में समझता है उसका कर्तव्य है कि दूसरे का सहयोग प्राप्त करे।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सब बातों पर विचार करने में हमें द्वितीय पंच वर्षीय योजना का बराबर ध्यान रखना चाहिये। यह ठीक है कि जो योजना बनाई गई है वह प्रत्येक ज़िले के लिये पृथक रूप से बनाई गई है इस लिये यदि किसी ज़िले को एक राज्य से निकाल कर दूसरे राज्य में मिला दिया जाये तो उस में अधिक अन्तर नहीं पड़ेगा परन्तु यदि सारा राज्य जड़ से बदल दिया जायेगा तो हमारी सारी शक्ति जम कर बैठने में लग जायेगी पंच वर्षीय योजना में नहीं लगेगी।

अंत में मैं एक सुझाव देना चाहता हूं जिसे मैं पहले नहीं पसंद करता था परन्तु अब जितना ही मैं उस पर विचार करता हूं उतना ही वह मुझे आकर्षक जान पड़ता है। मेरा सुझाव यह है कि भाषा का विचार किये बिना भारत को चार पांच या छै समूहों में बांट दिया जाये। परन्तु ऐसा करने के साथ साथ इसका ध्यान रखा जाये कि उन राज्यों

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

की भाषाओं को अधिक से अधिक महत्व दिया जाये। मैं जानता हूं कि अब हम विपरीत दिशा में बहुत आगे बढ़ चुके हैं और यह कार्य जरा कठिन है। मेरा सुझाव है कि आरम्भ में इनकी रचना प्रादेशिक परिषदों के रूप में की जाये। आर्थिक समस्याओं, सीमा सम्बन्धी समस्याओं तथा अन्य समस्याओं को हल करने में केन्द्र इनकी सहायता ले। ऐसी पांच परिषदें बनाई जा सकती हैं।

श्री कामत (होशंगाबाद) : उच्च न्यायालय भी इन राज्यों के लिये सांझे हों।

श्री जवाहरलाल नेहरू : अन्य चीजें भी समान हो सकती हैं परन्तु सब से अधिक महत्वपूर्ण यह है कि उनकी आर्थिक अवस्था समान हो। हमारे पास नदीघाटी तथा अन्य प्रकार की बड़ी बड़ी योजनायें हैं जिन को चलाने में इस प्रकार बड़ी सुविधा हो जायेगी। इसके अतिरिक्त मिल जुल कर काम करने का अभ्यास बढ़ेगा। परस्पर अलग करने वाली दीवार टूट जायेगी। आगे चल कर हो सकता है कि यह प्रादेशिक परामर्श परिषदें कोई महत्वपूर्ण चीज बन जायें। परन्तु यह कार्य हमें बहुत धीरे धीरे और सावधानी के साथ करना चाहिये जिस से जनता को यह संदेह न हो कि उनके राज्य की रचना को कमज़ोर किया जा रहा है। इसलिये ऐसी पांच परिषदें बनाई जायें एक उत्तर के लिये, एक दक्षिण के लिये, एक पूर्व के लिये, एक पश्चिम के लिये तथा एक मध्य भाग के लिये। मैं यह सुझाव सभा के विचार करने के लिये प्रस्तुत करता हूं।

श्री चट्टोपाध्याय (विजयवाड़ा) : श्रीमान्, मैं यह पूछना चाहता हूं कि क्या प्रधान मंत्री को भाषा के आधार पर राज्य-निर्माण के बारे में बोलना चाहिये था और क्या इसी आधार पर इस आयोग की नियुक्ति की गई थी ?

कुछ माननीय सदस्य : यह कोई भाषा आयोग नहीं है।

अध्यक्ष महोदय : माननीय सदस्य ने आयोग के उद्देश्यों को भली भांति नहीं समझा है। आयोग ने न केवल भाषा की दृष्टि से सिफारिशें नहीं की हैं बल्कि देश की एकता और अन्य बातों पर भी ध्यान दिया है। इस प्रकार छोटी छोटी बातों पर सभा का समय नष्ट नहीं किया जाना चाहिये। अब मैं श्री बी० शिवा राव से अपना भाषण प्रारम्भ करने को कहता हूं। वे बीमार हैं इसलिये बैठे बैठे बोल सकते हैं।

[**पंडित ठाकुरदास भार्गव** पीठासीन हुए]

श्री बी० शिवा राव (दक्षिण कन्नड़-दक्षिण) : मैं आज तीन वर्ष के बाद सभा के वाद विवाद में भाग ले रहा हूं। वह भी केवल इसलिये कि आयोग की सिफारिशों से मेरे जिले और मेरे निर्वाचन क्षेत्र पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

आयोग की सभा में काफी प्रशंसा की जा चुकी है। स्वयं माननीय गृह मंत्री ने दोनों सभाओं में उस की प्रशंसा की है फिर भी मैं समझता हूं कि सरकार ने जिस उद्देश्य को लेकर आयोग की नियक्ति की थी उसे आयोग ने पूरी तरह कार्यान्वित नहीं किया है। उससे कहा गया था कि वह एक अन्तरिम प्रतिवेदन प्रस्तुत करे, जिस पर केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें अपना निश्चय करेंगी। उस के बाद यदि सरकार आवश्यक समझे तो उससे अधिक विस्तार में जाने को कहा जा सकता था। आयोग ने तो पहले ही सब काम कर डाला।

भूतपूर्व संविधान सभा का सदस्य होने के नाते इस विषय में उस समय की गई चर्चा का कुछ उल्लेख करना चाहता हूं। स्वर्गीय श्री बी० एन० राव ने उस चर्चा में भाग लेते हुये कहा था कि भाषा के आधार जैसा कि हंगरी में किया गया है वैसा ही हमारे यहां भी होना चाहिये अर्थात् भाषा के आधार पर राज्यों में उपप्रान्त बना दिये जाने चाहिये। यह विचार बहुत अच्छा है क्योंकि ऐसा करने से राज्यों के पुनर्गठन का व्यय भी टल सकता है और किसी प्रकार की अशान्ति से भी छुटकारा मिल सकता है। सरकार को इस ओर अवश्य ध्यान देनी चाहिये।

अब मैं अपने क्षेत्र के प्रश्न को लेता हूं। दक्षिण कन्नड़ के कसरगोड ताल्लुक को नये केरल राज्य में मिलाने की शिफारिश की गई है। यह क्षेत्र पश्चिमी घाट और अरब सागर के बीच में तथा मलाबार के दक्षिण में स्थित है। चन्द्रगिरि नदी के द्वारा यह क्षेत्र दो भागों में बटा हुआ है। इस नदी के दक्षिण में स्थित खण्ड के लोग मलयालम बोलते हैं। अनेक शताब्दियों से यह नदी, दो प्रदेशों के बीच सीमा का काम कर रही है। इतिहासकारों ने यह भी कहा है कि यह अशोक के साम्राज्य की सीमा थी। अंग्रेजी शासन के समय भी यही नदी तुलुवा राज्य और केरल के बीच की सीमा थी। परिसीमन आयोग के समय भी चन्द्रगिरी नदी को दोनों के बीच की सीमा समझा गया। जिस समय राज्य पुनर्गठन आयोग के दो सदस्य वहां आये तो ये बातें उन्हें भली भांति समझा दी गई थीं। उनकी सिफारिश को पढ़ कर वहां के लोगों को बहुत निराशा हुई है। शिफारिश में यह कहा गया है कि प्रशासन की दृष्टि से इस समस्त ताल्लुक को केरल में मिलाना उचित है।

इस प्रसंग में मैं यह भी बताना चाहता हूं कि मद्रास के विधान मण्डल ने आयोग सम्बन्धी वाद-विवाद में यह तय किया था कि इस ताल्लुक का केवल दक्षिणी भाग केरल में मिलाया जाय और उत्तरी भाग दक्षिण कन्नड़ जिले में रहे। यही निश्चय मैसूर की विधान सभा मे भी किया था।

कसरागोड ताल्लुक के उत्तरी भाग के १६४ स्कूलों में से १४४ स्कूलों में शिक्षा का माध्यम कन्नड़ है। उत्तरी भाग के ३६ पंचायत बोर्डों में से ३४ पंचायत बोर्डों ने यह संकल्प पारित किया है कि उस भाग को दक्षिण कन्नड़ में रखा जाय।

अब मैं एक दूसरा तर्क प्रस्तुत करता हूं। कसरगोड के उत्तरी भाग की भाषा को वहां के लोग तुलू भाषा कहते हैं जिसकी पृथक् लिपि तो नहीं है किन्तु जो कन्नड़ और मलयालम से कुछ पृथक् है। अतः इस क्षेत्र का केरल मे पृथकत्व बनाये रखना चाहिये।

केरल वासियों की मांग का आधार यह है कि उन के पास केवल १५,००० वर्ग मील भूमि है और आबादी १ करोड़ ३५ लाख है अतः उन्हें अधिक भूमि दी जानी चाहिये। वे तो पूरे दक्षिण कन्नड़ और नीलगिरि जिले को मिलाना चाहते थे। किन्तु, जब उन की मांग अस्वीकार कर दी गई है तो फिर एक छोटा सा क्षेत्र उन्हें देने से उनकी आबादी की समस्या कैसे हल होगी। मेरी निजी धारणा यह है कि आयोग ने इस क्षेत्र के बारे में ठीक निश्चय नहीं किया है। मेरा सुझाव तो यह है कि केरल राज्य बनाने के बजाय मद्रास और कर्नाटक को मिला कर एक अनेक भाषी राज्य की स्थापना की जानी चाहिये।

अन्त में, मैं आशा करता हूं कि सरकार इन सुझावों पर भलीभांति ध्यान देगी।

श्री मेघनाद साहा : ऐसा कहा गया है कि राज्य पुनर्गठन आयोग को कुछ निर्देश पद दिये गये थे। किन्तु यदि आप इसको प्रतिवेदन को सावधानी से आदि से अन्त तक